

मैं और बकरी



बकरी को लेकर मेरे कुछ अनुभव हैं। 'आपके कैसे हो सकते हैं?' मेरे एक कांग्रेसी मित्र ने मेरे उपर्युक्त कथन पर आपत्ति ली है। उनका कहना है कि गांधीवादियों को ही हक है कि वे ऐसी बातें करें। मैं गांधीवादी नहीं हूँ। इस लिहाज से उन्हें यह ठीक नहीं लगा कि मैं दावा करूँ कि बकरी को लेकर मेरे भी कुछ अनुभव हो सकते हैं। पर क्या करूँ कि मेरे हैं। पहले क्यों नहीं बताया? हाँ, आपका यह प्रश्न अपनी जगह जायज मान सकता हूँ। दरअसल, पहले मैं शरमाता था। आप गांधीवादी हैं, सो नहीं शरमाते। गांधीवादी आसानी से शरमाता नहीं। मेरे एक मित्र गांधीवादी थे, जिन्होंने एक दलित की टुकाई करके उसे जमीन से बेदखल कर दिया था। मैंने कहा कि आपको शर्म आनी चाहिए। वे बोले कि हमें नहीं, आपको शर्म आनी चाहिए कि आप मुझ जैसे गांधीवादी को गलत बता रहे हैं, जबकि इस देश में आजादी के बाद से गांधीवादी हरदम सही सिद्ध हुआ है। सो मैं तो शरमाता था कि क्या तो बकरी तथा मेरे बीच की अपनी घरेलू-सी बातें जगजाहिर करूँ। परंतु इधर मैंने एक पत्रिका में बकरी पर एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन की रिपोर्ट पढ़ी, तो चकित रह गया। चार दिनों तक चले इस सेमिनार में अनेक विद्वानों ने बकरी को लेकर अपने विचार प्रकट किए, तब मुझे ज्ञात हुआ कि बकरी विषयक जिन अनुभवों को मैं शर्म से छुपाए घूमता था तथा बताने पर होनेवाली बदनामी से डरता था, वे वास्तव में खासे गौरवपूर्ण अनुभव थे। और वे बकरी के कारण गौरवपूर्ण थे, मेरी वजह से नहीं। सम्मेलन में बकरी के विषय में जब ऐसी बड़ी-बड़ी बातें कही गईं, तब मैंने जाना कि यहाँ-वहाँ मिमियाती जो अदनी-सी शख्सियत कभी मेरे जीवन में आती-जाती-घूमती फिर रही थी, वह वास्तव में कितनी बुलंद हस्ती थी (है!) सो, देर आयद, दुरुस्त आयद। कृपया बकरी को लेकर मेरे अनुभवों पर गौर करें।

बकरी से मेरा पहला साक्षात्कार हमारी पहली कक्षा के गुरुजी ने कराया था और कान मरोड़ते हुए हमें बताया था कि 'ब' बकरी का होता है। उनका सिखाया हुआ मैं, बाद के बहुत वर्षों तक 'ब' को बकरी की ही बपौती मानता रहा। यह तो बाद में जीवन ने मुझे 'ब' बदमाशी का, 'ब' बदहाली का, 'ब' बटमारी का, 'ब' बँटवारे का, तथा 'ब' से बम आदि सही शब्द सिखाए। गुरुजी ने वैसे स्वयं भी एक बकरी पाल रखी थी, जिसको खिलाने-पिलाने-टहलाने से लगाकर उसका दूध निकालने तक की जिम्मेदारी हम छात्रों की हुआ करती थी। गुरुजी की जिम्मेदारी उसका दूध पीकर हमें ठोकने की थी। इस सेवाटहल के दौरान मैं बकरी के बेहद करीब आया। फिर भी, मैं उस बकरी के इतना करीब कभी नहीं आया जितना करीब एक दिन मैंने गुरुजी को पाया। गुरुजी ने मेरी बढ़िया पिटाई की तथा सख्त चेतावनी दी कि खबरदार जो कभी, किसी को भी इस बाबत कुछ भी बताया। आज जब बकरी पर बोलते हुए किसी विद्वान ने उस सम्मेलन में यह बताते हुए बकरी की तारीफ की कि बकरी एक बेहद उपयोगी जानवर है, तब मुझे अपने गुरुजी बेहद

याद आए। उनकी सख्त हिदायत के बावजूद मैं कहना चाहूँगा कि मैंने उन्हें देखकर ही जाना कि बकरी वास्तव में बेहद उपयोगी जानवर है! बाद के वर्षों में बकरी मेरे जीवन में चोरी-छिपे आई।

या यूँ कहें कि मैं बकरी के जीवन में चोरी-छिपे घुसा। बकरी वस्तुतः पड़ोसी की थी, परंतु उसका दूध पीने की इच्छा हमारे परिवार की थी। हमारी इच्छा के अलावा हमारी इच्छाशक्ति भी बड़ी दृढ़ थी तथा हम कुछ मामलों में समाजवादियों या कहिए कम्युनिस्टों के इस विचार के हिमायती थे कि वस्तुओं पर किसी का एकाधिकार उचित नहीं। बराबर बाँट लें। बकरी आपकी, दूध हमारा। बकरी, जैसी कि उसकी आदत हुआ करती है, दोपहर के समय यत्र-तत्र टहलती थी तथा जहाँ भी सींगें समाएँ, वहाँ घुस जाती थी। हम बकरी की इसी आदत के कायल थे और ताक में रहते थे कि कब वो हमारी तरफ निकले। मैं उन दिनों दोपहर में सोता तक नहीं था। उसकी प्रतीक्षा करता। बाद में, प्रेम में पड़ जाने के दिनों को छोड़कर मैंने ऐसी प्रतीक्षा किसी की भी नहीं की। वह आती। उसे आना ही था। वह आती और गुरुजी द्वारा बचपन में ही ट्रेड कर दिया गया मैं, फटाफट उसका दूध निकाल लेता था। वास्तव में मैं इतनी तेजी से दूध निकालता था कि एक रिकार्ड-सा बन सकता था। परंतु एक तो तब गिनीज बुक के विषय में ज्ञात ही नहीं था, और दूसरा यह कि यदि ज्ञात होता भी, तो भी इस चोरी का सार्वजनिक प्रदर्शन संभव नहीं था। परंतु तथ्य यही था कि बकरी जब तक मेरे दो छोटे भाइयों के अप्रत्याशित आक्रमण से सँभल पाती थी, जो उसे दबोचकर पकड़ लेते थे, तब तक मैं देखते-देखते, कहिए कि पलक झपकते, लोटा भरकर दूध दुह लेता था। मेरी तेजी इस संदर्भ में ऐसी थी, जैसी कभी चंदबरदाई ने पृथ्वीराज चौहान की तलवार की तेजी की चर्चा की थी। बाद के दिनों में तो मैंने पाया था कि बकरी तक मुझे इसी कारण आश्चर्य तथा सम्मान की मिली-जुली भावना के साथ देखने लगी थी। स्वयं बकरी के लिए भी यह नितांत चमत्कारी-सा अनुभव था। उन दिनों हम भाइयों का स्वास्थ्य अचानक ही काफी अच्छा होने लगा था तथा हमें गांधीजी की इस बात पर भरोसा होने लगा था कि बकरी का दूध सेहत के लिए सर्वोत्तम होता है। उन दिनों मुझे बकरी का एक और गुण बेहद भाने लगा था कि वह साइज में छोटी-सी होती है। छोटा-सा शरीर होने के कारण आप बकरी को चोरी-छिपे उठाकर किसी भी कोने में ले जा सकते हैं तथा पोशीदा तौर पर उसका दूध निकाल सकते हैं। यह सुविधा गाय-भैंस के साथ उपलब्ध नहीं है। इस दयानतदार बकरी के साथ हमारे संबंध, या कहिए कि अवैध संबंध, लगभग दो वर्षों तक कायम रहे। परंतु जैसा कि अवैध संबंधों के साथ प्रायः हुआ करता है, एक दिन भेद खुल ही गया। नादान पड़ोसी ने इस बात पर सख्त एतराज प्रकट किया कि उसकी बकरी का यूँ हमारे घर चोरी-छिपे आना-जाना चलता रहा है। हमारे पिताजी ने उन्हें समझाने की कोशिश भी की कि इस उम्र में प्रायः बकरियों के कदम बहक जाने का खतरा तो खैर रहता ही है, परंतु उनको सही मार्ग पर रखना तथा सँभालना स्वयं पड़ोसी की जिम्मेदारी बनती है क्योंकि बकरी भी अंततः संस्कार तो अपने घर से ही सीखती है। खैर, इस प्रकार ये संबंध समाप्त हो गए। यों, बकरी यदा-कदा मौका पाकर बीच-बीच में हमारे घर चोरी छिपे आती-जाती रही, परंतु संबंधों में वह पुरानी गर्माहट नहीं रही।

बड़ी उम्र में बकरी एक राजनीतिक शक्ति के तौर पर मेरे जीवन में प्रविष्ट हुई। आजादी के तुरंत बाद के समय में अचानक ही छोटे-छोटे कस्बों तथा गाँवों के स्तर पर बकरी की पूछ-परख बढ़ गई। शहर के गांधीवादी जहाँ गांधीजी के सही इस्तेमाल की दिशा में कूच कर गए थे, कस्बों के स्तर पर गांधीजी के प्रति एक किस्म की रोमानी भावुकता का माहौल बना रह गया था। बकरी का गांधीवाद के प्रतीक के रूप

में उपलब्ध होना लोगों को सरल लगा, क्योंकि यह चलता-फिरता गांधीवाद सहज ही गली में मौजूद रहता था। सो बकरी को गांधीवाद से जोड़ने के प्रयास खूब चले। कम-से-कम हमारे कस्बे में तो हुए। और कस्बे का न भी मानें, तो हमारे घर में तो खूब चले। कस्बे ने बाद में गांधीवाद को ज्यादा सहज तथा रेडीमेड उपलब्ध चीजों से, यथा गांधी टोपी, खादी की बंडी तथा चरखे आदि से जोड़ लिया, जो बकरी से कहीं अधिक सुविधाजनक सिद्ध हुआ। परंतु हमारा परिवार पुराना कांग्रेसी था, जैसा कि उस जमाने में प्रायः परिवार हुआ करते थे। क्योंकि वैसा कहने में किसी के बाप का कुछ जाता भी नहीं था। और शासन भी कांग्रेस का होने के कारण यह फायदे का सौदा ही था। तब हमारे पिताजी खादी पहिनते थे, गांधी टोपी बापरते थे। इसी झटके में, स्वयं को दूसरों से ज्यादा खाँटी गांधीवादी सिद्ध करने के लिए उन्होंने अचानक यह निर्णय ले डाला कि घर में एक अदद बकरी भी पाली जाएगी। मेरी माँ गांधीवाद के इस चौपाए-पक्ष के सख्त खिलाफ थीं क्योंकि बकरी दिनभर ही घर में गंदगी मचाती फिरती थी। बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। घर में रोज चिकचिक होती। बकरी के चक्कर में घर में गांधीवाद तक पर हमले होने लगे। माँ ने तो एक दिन यहाँ तक कह डाला कि इससे अच्छा तो यही होता कि तुम कम्युनिस्ट हो जाते – एक लाल झंडे के अलावा और कोई झंडा तो न होती! जमीनी राजनीति तब भी ऐसे ही प्रतीकों पर चलती थी। बकरी के खिलाफ एक हवा बन रही थी। घर में बेवजह तनाव-सा रहता। पिताजी भी बकरी पालकर पछताने से लगे थे और बकरी की चिकचिक के चलते उनका मन गांधीवाद तक से उचटने लगा था। फिर वह बकरी भी अपनी किस्म की एक ही थी।

वह नाम की ही बकरी थी। दूध उसने कभी दिया नहीं। उधर उसकी हरकतें दिनोंदिन बड़ी कमीनी तथा ओछी होती जा रही थीं। वह मानो जुलाब लेकर ही इस धरा पर उतरी थी और दिन भर की उसकी प्रमुख गतिविधियों में यही बात काम करती थी। इधर माँ साफ करती कि उधर वह फिर कर देती। वह माँ पर नजर-सी रखती। बाद के दिनों में वह घर के कपड़े चबाने के शौक में पड़ गई। उसने एक कपड़ा फाड़ो आंदोलन-सा चला दिया और अपना जीवन मानो इसी महान उद्देश्य हेतु समर्पित कर दिया कि हमारे घर के सदस्य चिथड़े पहिनकर घूमें। उन दिनों हमारे फुलपैट उस तरह के हो गए थे, जैसे कि आजकल फैशने के मारे मॉडल वगैरह पहनते हैं और अधोवस्त्र तो इस प्रकार तार-तार हुए थे कि उनका पहिनना एक औपचारिकता का निर्वाह मात्र कहा जा सकता था – उनसे किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती थी। स्कूल की ड्रेस को मैं स्कूल से लौटते ही लोहे के ट्रंक में छुपा देता। परंतु न जाने किस पॉलिसीवश अथवा चालाकी के तहत वह पिताजी के कपड़ों पर मुँह नहीं मारती थी। या शायद पिताजी के कपड़े खादी के होते थे और बकरी को या तो खादी के प्रति वितृष्णा थी, या फिर कदाचित आदर का भाव – वह उनके कपड़ों को सूँघती भी नहीं थी। परंतु एक दिन उसने गांधीवाद को किनारे करते हुए पिताजी का नया कुरता चबा डाला। तब पिताजी ने अहिंसा के सिद्धांत को किनारे करते हुए, वहीं किनारे पर पड़े डंडे को उठाकर बकरी को खूब डंडे लगाए, उसे नितांत मौलिक तथा चमत्कारी गालियाँ सुनाई और गली में दूर तक खदेड़कर ही लौटे।

पिताजी कुछ दिनों तक उदास रहे। वे अब क्या कहते? वे तब तक हर एक से कहा करते थे कि भई, हम तो गांधीजी के जीवन दर्शन पर चलते हैं – खादी पहिनते हैं, चरखा चलाते हैं और बकरी का दूध पीते हैं। ऐसा कहकर वे गर्दन इस हद तक अकड़ा लेते थे कि उससे कड़कड़ की आवाज-सी आती थी। बकरी मानो उनके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण हिस्सा थी। जब उन्हें जीवन में गांधीवाद चहुँओर छीजता दिख रहा

था, तब वे निराशा में बकरी की पूँछ पकड़कर ही गांधी से जुड़ा महसूस करते थे। उन दिनों कस्बाई राजनीति में एक स्तर था और लोग बुजुर्गों का लिहाज करते थे। यही कारण था कि लोग उनकी ये सब फालतू बातें तथा हरकतें न केवल बरदाश्त कर लेते थे, बल्कि इनके लिए पिताजी की इज्जत भी करते थे। अलबत्ता, बकरी के साथ पिता जी ने जो किया, उससे उनकी इज्जत में जो इजाफा हुआ, वह अतुलनीय था। समय गुजर गया।

न पिताजी रहे, न खादी। कस्बे में अब न बकरी को कोई पूँछता है, न गांधीजी को। धीरे-धीरे बकरी क्या, गांधी तक इस देश की राजनीति में अप्रासंगिक हो गए। लोग बकरी तथा गांधी, दोनों को भूल गए। दूध न बकरी का रहा, न गाय का – वह प्लास्टिक के पैकेट का हो गया। गांधी न कांग्रेस के रहे, न देश के – वे इतिहास की जिल्द के हो गए। बकरी के नाम से लोगों को बकरा याद आने लगा कि जिसका मांस बड़े चाव से उत्सवपूर्वक खाया जाता है और गांधी से लोगों को उनके नाम खड़ी की गई वे हजारों संस्थाएँ तथा योजनाएँ याद आने लगीं कि जहाँ गांधी के आदर्शों का हाल भी बकरे के मांस जैसा हो रहा है। अभी जब मैंने बकरी को लेकर हुए सम्मेलन की खबरें पढ़ीं, तब मेरे कान खड़े हुए, अन्यथा तो मैं बकरी को भूल ही चुका था। मैं चिंतित हूँ कि लोगों को बकरी की याद क्योंकर आ रही है? चक्कर क्या है? कहीं बकरी के जरिए ग्रामीण मतदाताओं को मूर्ख बनाने का पुराना खेल फिर से तो नहीं चलाएँगे? मैं पुनः बकरी की चिंता से चिंतित हूँ। मैं बकरी के लिए चिंतित हूँ। बकरी से अपने पुराने आत्मीय संबंधों की चर्चा मैंने की ही। इन्हीं के कारण मैं बकरी के लिए चिंता कर रहा हूँ। परंतु किसी ने कहा ही है कि बकरे की माँ कब तक खैर मनाएगी? किसने कहा यह? गांधीजी ने तो नहीं ही कहा था, यह तय है। गांधीवादियों ने कहा होगा, ऐसा संदेह है मेरा।

साभार- <http://www.hindisamay.com/> से